International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-6, Issue-1 March - 2019
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

टैगोर के साहित्य में शिक्षण सिद्धान्त तथा भाषा का मूल्यांकन

Prof. Mridula Srivastava,
Ex. H.O.D.,
Department of Psychology,
B.R.A. Bihar University,
Muzaffarpur.

Girjesh Kumari
Research Scholar
Department of Education
B.R.A. Bihar University
Muzaffarpur

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में शिक्षा के सर्वांगीण विकासार्थ रबीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों की अभिव्यक्ति अत्यन्त आवश्यक, प्रासंगिक एवं औचित्यपूर्ण है। इनके शैक्षिक विचारों की अभिव्यक्ति के आधार पर ही वर्तमान परिवेश में राष्ट्रीय स्तर पर लोगों को विविध आयामों के सापेक्ष विकास करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। सम्यक् विश्लेषण के आधार पर ज्ञात होता है कि आधुनिक समय में शिक्षा दर्शन के विषय में विविध समीक्षकों ने अपने–अपने अलग–अलग विचार व्यक्त किये हैं। शिक्षा दर्शन से शिक्षा के उद्देश्य व क्रियाएँ निर्मित व परिवर्तित होती हैं, उसके सापेक्ष शैक्षिक मार्गदर्शन सुलभ होता है, जो शैक्षिक पर्याप्तता के अभाव को पूर्ण करता है। साथ ही शैक्षिक अनुसन्धानों के परिक्षेत्र में कुछ अर्वाचीन दिशायें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं, जो दार्शनिक अनुसंधान के क्षेत्र का गत्यात्मक पहलू बन जाता है।

"शिक्षा का अर्थ क्या यह नहीं है कि विभिन्न समस्याओं का सामना करने के लिए वह आपको समर्थ बनाए। यह आवश्यक है कि इन सभी समस्याओं का ठीक ढंग से सामना करने के लिए आपको शिक्षित किया जाय। यही शिक्षा है, न कि मात्र कुछ परीक्षाएँ पास कर लेना, कुछ विषयों का, जिनमें आपकी रुचि बिल्कुल नहीं है, उनका अध्ययन कर लेना। सम्यक शिक्षा वही है जो विद्यार्थी की इस जीवन का सामना करने में मदद करे, ताकि वह जीवन को समझ सके, उससे हार मान न ले, उसके बोझ से दब न जाए, जैसा कि हममें से अधिकांश लोगों के साथ होता है। लोग, विचार, देश, जलवायु, भोजन, लोकमत यह सभी कुछ लगातार आपको उस खास दिशा में ढकेल रहे हैं, जिसमें कि समाज आपको देखना चाहता है। आपकी शिक्षा ऐसी हो कि वह आपको इस दबाव को समझने के योग्य बनाए, इसे उचित ठहराने के बजाय आप इसे समझें और इससे बाहर निकलें, जिससे कि एक व्यक्ति होने के नाते, एक मनुष्य होने के नाते, आप आगे बढ़कर कुछ नया करने में सक्षम हो सकें और

परम्परागत ढंग से विचार करते न रह जाएँ। यही वास्तविक शिक्षा है।''

इसलिए आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता व प्रासंगिकता बन पड़ी है कि आध्यात्मिक पहलुओं से जुड़े शिक्षाशास्त्रियों के शैक्षिक विचारों को क्रमबद्ध रूप प्रदान किया जाय तथा उनका तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय। आधुनिक सदी के महान विचारक एवं शिक्षा मनीषियों में सहृदय कवि रबीन्द्रनाथ टैगोर का एक स्वतन्त्र चिन्तक एवं विचारक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान नियत है। गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार सर्वोच्च शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है। इसी परिप्रेक्ष्य में टैगोर ने भी कहा है कि 'शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है, जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।' मानव जन्म से विलक्षण शक्तियों से ओत–प्रोत रहता है। उन शक्तियों का उचित दिशा में विकास करना शिक्षा का मुख्य कार्य है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य नाना प्रकार के ज्ञान और कौशल से युक्त हो समाज में अपने विचारों से क्रान्ति उत्पन्न कर समाज को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर करता है।

1.2. पूर्व भारतीय शिक्षा शास्त्रियों की शिक्षण विधियाँः–

भारतवर्ष में वेद–उपनिषद आदि के आधार पर हिन्दुमतानुयायियों में शिक्षा कंठरस्थीकरण के आधार पर ही चलती रही, जिसकी कठिनता एवं विदेशी आक्रमणों एवं शिक्षा के एकांशी स्वरूप, विभिन्न धर्मानुयायियों के आक्रमण एवं धार्मिक प्रतिस्पर्धा, इर्ष्या तथा शिक्षा की महत्ता कम आंकने व शिक्षा प्रचार प्रसार के साधनों की कमी के कारण कोई सार्थक शिक्षण विधियां प्रकाश में नहीं आयी। शंकराचार्य जी के पश्चात मूल्य शिक्षा शास्त्री के रूप में महर्षि दयानन्द का नाम लिया जाता है। जिनकी शिक्षण विधियों को कोई स्पष्ट स्वरूप सामने नहीं आता, क्योंकि आदि शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द जीव जगत और आत्मा, ईश्वर (परआत्मा) और प्रकृति के सम्बन्ध में व्याख्यान अधिक हैं जो आध्यात्मिक और काल्पनिक, मानसिक संवेगों की प्रकृति में आभाष करके व्यक्त करते हैं। तात्कालिक खोज और प्रचलित विचारधारा के चिन्तन की उच्चता के आधार पर सत्यार्थ प्रकाश के सम्मुल्लास 2 में बालक के बचपन में शिक्षा किस प्रकार दी जाय और सम्मुल्लास 3 में ब्रह्मचर्य पठन पाठन व्यवस्था सत्यासत्य ग्रंथों को जानने की रीति व पठन–पाठन विधि की विवेचना का उल्लेख है।

द्वितीय सम्मुलास के अनुसार –उच्चारण के सम्बन्ध में कहा–जब बालक बोलने लगे तब उसकी माता वैसा उपाय करें जिससे बालक की जिव्हा कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके। ओष्ठ स्थान और स्पष्ट, प्रयत्न,

दोनों ओष्ठो को मिलाकर बोलने, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत स्वरों को मिलाकर ठीक–ठीक बोलने, मधुर स्वर, अक्षर–भाषा, मात्रा पद, वाक्य संहिता सिखायें। जब बालक कुछ–कुछ बोलने लगे तब सुन्दर वाणी और वे छोटे बालक मानवीय पिता–माता, राजा, विद्वान आदि के भाषण से भी वर्तमान और उनके पास बैठने आदि से भी शिक्षा ग्रहण करें। इस प्रकार माता–पिता राजा–विद्वान आदि से शिक्षा ग्रहण करने की विधि बताएं। इसके पश्चात् सर सैय्यद अहमद खां का नाम आता है जिनकी विचार धारा तात्कालिक स्त्री शिक्षा व पुरूष शिक्षा में समानता पर बल देते हुए पुरूषों द्वारा स्त्रियों को भी शिक्षित करने की बात तो कही परन्तु कोई शिक्षा विधि नहीं बतायी।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने शिक्षा कैसी हो? उसका भारत पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और भविष्य क्या होगा। इन तथ्यों पर विचार किया। परन्तु कोई शिक्षण विधि विकसित नहीं की। घोडो केसव कर्वे ने अनाथ आश्रम में निष्काम कर्म मठ, महिला विश्वविद्यालय, ग्राम्य शिक्षा, समता संघ आदि की स्थापना तो की परन्तु शिक्षण विधियों पर कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। स्वामी विवेकानन्द ने खेल विधि, व्यवहार विधि, अनुकरण विधि आदि से शिक्षण कार्य करना बताया। गोपाल कृष्ण गोखले ने भी शिक्षा के क्षेत्र में कार्य किया परन्तु विधि विशेष विकसित नहीं की। मदन मोहन मालवीय जी ने भी शिक्षण विधियों पर विशेष कार्य नहीं किया। महायोगी श्री अरविन्द ने रूचिनुसार शिक्षण, अभ्यास विधि, तर्क विर्तक विधि का सहारा लिया। गांधी जी ने क्राफ्ट केन्द्रित विधि से शिक्षण किया एवं अनुभव पर बल दिया।

आचार्य विनोबा भावे ने फ्रोबेल, पैस्टालॉजी एवं माण्टेसरी पद्धति को वाणी युक्त भ्रम, प्राणहीन व अवास्तविक शिक्षा पद्धति बताया। उन्होंने तत्कालीन शिक्षण विधियों को केवल पद्धति, परिशेष पद्धति, समुच्य पद्धति व संयोजन पद्धति नाम देकर सभी शिक्षण पद्धतियों को अपूर्ण बताया तथा समवाय पद्धति (हस्त शिल्प पद्धति) को सुझाया।

डा0 सर्वपलली राधाकृष्णन ने उचित शिक्षा पद्धतियों के विकास की और इशारा किया। डा0 जाकिर हुसैन ने भी शिक्षा पद्धति पर कोई विशेष कार्य नहीं किया।

1.3 भारतीय शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख शिक्षण विधि विकास समस्याः–

उपरोक्त शिक्षा शास्त्रियों के काल की यदि बात करें तो स्पष्ट होता है कि इन शिक्षा शास्त्रियों के काल में भारत पर गुलामी व आक्रमणों का दौर था। मुख्य प्रश्न था देश पर वाह्य धार्मिक एवं लूटकारी आक्रमणों व प्रलोभनों से

कैसे समाज को बचाया जाय। इसलिए शिक्षण पद्धतियों के विकास के लिए उन्हें समय ही नहीं मिला। इसी काल में रविन्द्रनाथ टैगोर भी शिक्षा शास्त्री के रूप में उभरे उन्होंने अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक यात्राएं की और वह भी पाश्चात्य जगत में शिक्षण विधियों से परिचित हुए वे शिक्षण पद्धतियां मनुष्य को भारतीयों की अपने खच्चर की तरह प्रयोग में आने वाले नागरिक बनाना चाहती थी। टैगोर जी ने समझ लिया कि भारतीय मूल संस्कृति को भारतीय शिक्षण पद्धति द्वारा ही बचाया जा सकता है इसलिये उन्होंने प्राचीन गुरूकुलों के आधार पर गरीब भारत के परिवेश में पेड़ों के नीचे शिक्षा दिये जाने का मन मनाया और अंग्रेजी तथा भारतीय संस्कृति में समन्वयात्मक शिक्षण के उद्देश्य शिक्षण विधियों की समन्वित रूप से प्रयुक्त करने का प्रयास किया।

1.4 शिक्षण सिद्धान्तः–

टैगोर की विचारधारा के अनुसार शिक्षण–विधि कुछ सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए तभी वह शिक्षा लाभप्रद हो सकती है। ये सिद्धान्त निम्नवत हैंः–

प्रगतिशील सिद्धान्तः–सभी प्रगति शिक्षाविदों के दर्शन की भाँति टैगोर की पद्धति का दर्शन शिक्षा की प्रक्रिया को जीवन्त बनाये रखना है। ये किसी ऐसी शिक्षण–पद्धति के दृढ़ आलोचक हैं जो यांत्रिाक, बुद्धिरहित एवं नीरस व मृत हो। अपपे समय के लाक्षणिक देशी स्कूलों के विषय में इन्होंने आलोचना की कि वे कमोवेश शिक्षा देने की फैक्टरी हैं जो शिक्षा की यांत्रिाक पद्धति के द्वारा एक सा उत्पादन करती हैं यानि भौतिक आदर्शों से प्रेरित होकर एक ही प्रकार के विद्यार्थी निकलती हैं। ये संस्थायें परीक्षायें उत्तीर्ण करने तथा नौकरी प्राप्त करने के एक मात्रा उद्देश्य से पूर्ण रूपेण प्रेरित हैं। इनकी परीक्षाएं, अस्वभाविक पाठ्यक्रम एवं विदेशी भाषा के माध्यम से होती है। अपने बचपन में टैगोर ऐसी शिक्षण पद्धति से भाग गये तथा अपने शैक्षिक विचारों एवं कार्य–कलापों में ये अत्यंत आग्रही (जिद्दी) रहे।

टैगोर का मनोविज्ञानिक शिक्षण सिद्धान्तः–टैगोर ने अपनी शिक्षण विधियों को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित किया, जो शिक्षा सिद्धान्त में बहुत समय पश्चात् मुख्यतः ''हरबर्ट मनोविज्ञान का प्रभाव'' के रूप में मान्य हुई और अब आधुनिक अध्यापन विज्ञान में इसका एक सामान्य स्थान बन गया है। टैगोर के अनुसार शिक्षा का आधार व्यावहारिक तभी हो सकता है जब उसे मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाय। इनके अनुसार शिक्षा तभी सुदृढ़ हो सकती है जब वह ''निकट से दूर की ओर'' तथा ''ज्ञात से अज्ञात की ओर'' बढ़े...., हम ज्ञात को

पकड़कर ही अज्ञात तथा अदृश्य को प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमारा अधिगम, मुख्यतः जो चारों ओर अस्तित्व में नहीं है तथा जो हमारे सम्मुख उपस्थित नहीं है, पर आधारित रहते रहेंगे तो प्राप्त ज्ञान क्षीण हो जायेगा। यदि हम परिचित को पूर्णतया समझते हैं तो हम अदृश्य एवं अपरिचित का ज्ञान अनुभव कर सकते हैं। वास्तविक अधिगम स्पष्ट प्रभाव को सुगम बना देता है, जिसके अभाव में खोज की शक्तियाँ उचित प्रकार से कार्य नहीं कर सकती। इन्होंने बलपूर्वक कहा कि वास्तविकता से परित्यक्त हमारा मस्तिष्क हृदय अथवा कल्पना कुछ भी हो, प्रत्येक वस्तु क्षीण एवं विकृत हो जाती है।

करके सीखने का सिद्धान्तः– टैगोर की शिक्षण पद्धति में ''करके सीखने'' के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया है। यह सिद्धान्त शरीर एवं मस्तिष्क के अभिन्न संबंध की दार्शनिकता पर आधारित है। जिसे टैगोर ने अपने ''शिक्षार हेरफेर'' में इंगित किया है। इन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि शारीरिक क्रियायें न केवल शरीर को प्रेरित करती हैं अपितु मस्तिष्क को भी भी शक्ति प्रदान करती हैं। इसी आधार पर इन्होंने संस्तुति की कि स्कूल के विद्यार्थियों के लिए कुछ हस्तकला व प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिये। इनके शब्दों में, ''यह मेरा दृढ़ मत है कि शारीरिक तथा मानसिक चेष्टा व शिक्षा में घनिष्ठ संबंध है। यदि इन दोनों में उचित समन्वय नहीं होगा तो हमारे जीवन की लय अव्यवस्थित हो जाएगी।''

सर्जनात्मकता का सिद्धान्तः– शिक्षण–विधि में सर्जनात्मकता के सिद्धान्त को महत्वपूर्ण मानते हुए टैगोर ने कहा कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली मुख्यतः सैद्धान्तिक प्राप्त करने तक सीमित थी। शनै–शनै इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी अनिवार्य है जिससे मनुष्य विश्व में अपना सामंजस्य स्थापित कर कसे। व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए रचनात्मक क्रियाओं पर बल दिया गया। सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के विषय में टैगोर ने कहा कि इसके द्वारा मानव उसी प्रकार स्वतन्त्रता अनुभव करता है जिस प्रकार भगवान स्वयं मानव जाति की रचना करने में अपनी निजी स्वतन्त्रता अनुभव करते हैं और इस प्रकार से उनकी प्रकृति पूर्ण हो जाती है।

अभ्यास का सिद्धान्तः– टैगोर के अनुसार शिक्षण–विधि अभ्यास के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि क्रिया को बार–बार दोहराया जाये तो वह अधिक प्रभावपूर्ण तथा स्थायी हो जाती है। टैगोर का विचार है कि बालक जो सीख रहें हैं, तुरन्त अभिव्यक्ति द्वारा उसका प्रति अभ्यास कराया जाना

चाहिये। क्योंकि ज्योंही हम एक बात सीखते हैं यदि तुरन्त ही उसकी अभिव्यक्ति कर लेते हैं तो हमारी धारणा स्पष्ट तथा ठोस हो जायेगी। इन्हें उस समय अत्यन्त प्रसन्नता हुई जब इन्होंने अपनी इस अवधारणा को सोवियत रूस के स्कूलों में व्यवहार में पाया।

प्रसन्नता एवं आनन्द का सिद्धान्तः– प्रसन्नता व आनन्द के सिद्धान्त पर बल देते हुए टैगोर विद्यालयों में आनन्दयुक्त वातावरण का होना आवश्यक समझते हैं, इन्होंने कहा कि माँ की सुखद गोग से विलग शिशु के लिए अपरिमित स्नेह तथा आनन्द का ज्ञान आवश्यक है। इन्होंने कहा कि अपरिमित स्नेह आवश्यक है.... प्रेम का स्रोत बहने दो ताकि छात्रों का मानस नित्यशः उससे परिपूरित हो जाया करे। इसी ''आनन्दम्'' के अन्तर्गत इन्होंने खेल, रचनात्मक क्रिया, अभिरूचि, उत्कण्ठा तथा व्यग्रता आदि को रखा। क्योंकि इन सभी के माध्यम से बालक को आनन्द की प्राप्ति होती है। टैगोर ने शिक्षा में भारतीय दर्शन के भौतिक सिद्धान्त के आधार पर प्रसन्नता व आनन्द के महत्व के सिद्धान्त को स्वयं सिद्ध मानते हुए माना कि सभी प्राणियों का जन्म आनन्द से ही होता है तथा प्रसन्नता की भावना जो अनन्त एवं असीमित है, सर्जनकर्ता के हृदय में निवास करती है। प्रकृति में स्वतन्त्रता के माध्यम से शिक्षा प्रदान को इन्होंने बहुत महत्वपूर्ण समझा क्योंकि आनन्द की यह भावना वाह्य प्रकृति में पूर्णताय प्रदर्शित होती है। अपने प्रथम शैक्षिक लेख ''शिक्षा हेरफेर'' में टैगोर ने इस सिद्धान्त पर बल देते हुए बताया कि शरीर एवं मस्तिष्क में बालक के लाभदायक व हितकर विकास के लिए प्रसन्नता कैसे प्रमुख महत्व की है तथा भारतीय बालक इस वर्तमान आनन्दविहीन शिक्षा पद्धति के माध्यम से इस आनन्द से कैसे वंचित रह जाते हैं। पश्चिमी जीवन में प्रसन्नता की कमी पर शोक प्रकट करते हुए टैगोर ने अजित कुमार चक्रवर्ती को लिखा, ''इसकी (आनन्द) पूर्ति के सच्चे स्वर को मानव के समक्ष प्रकट करने का समय है – यह सौन्दर्य तथा प्रसन्नता का स्वर है, यह व्योम की अकथनीय महिमा की प्रशंसा में गाया गया स्तुति गीत है। **जिज्ञासा एवं रूचि का सिद्धान्तः**– टैगोर ने शिक्षण–विधि में रूचि व जिज्ञासा के सिद्धान्त को बहुत महत्व दिया है। जाग्रत जिज्ञासा व यौवन का चित्रा है और जिज्ञासा में कमी निर्जीवता का लक्षण है। असीमित जिज्ञासा की समृद्ध देशों की सफलता, शक्ति ओर समृद्धि का कारण उनकी जाग्रत औज और संकल्प शक्ति है। दूसरी ओर भारत में दुखद रूप से यह अनुपस्थित है। यदि शिक्षा जिज्ञासा जाग्रत नहीं करती तो वह सच्ची शिक्षा नहीं है। जीवन का अर्थ भी रूचि के पथ पर निरन्तर प्रगति है। वर्तमान समय में भारतीयों में मानव तथा ज्ञान दोनों के ही प्रति रूचि नहीं है। एक जटिल पाठ्यक्रम और शिक्षा के ऊँचे उद्देश्यों ने बचपन से ही बालकों की जिज्ञासा को कुचल कर रख दिया है। जिज्ञासा तभी जाग्रत की जा सकती है जब शिक्षक स्वयं जिज्ञासु हो। अधिकांश भारतीय छात्रा इसी कारण जिज्ञासु नहीं है क्योंकि उनके शिक्षकों में उनके व वातावरण के प्रति जिज्ञासा का अभाव है।

व्यक्तिगत प्रयास एवं चिन्तन का सिद्धान्तः– टैगोर के अनुसार ज्ञानार्जन में व्यक्तिगत प्रयास व चिंतन बहुत महत्वपूर्ण है। इसी कारण ये शिक्षा में प्रचलित ''पकी पकायी खीर' व ''बिना अवरोध के रटने'' के विरोधी हैं। इनके अनुसार यदि यथार्थ वस्तु को छात्रों के सम्मुख रखा जाये तो उनकी निरीक्षण व तर्क शक्ति विकसित होगी। इनके अनुसार शिक्षा में अधिकतम प्रयास पुस्तकों से दूर हटने तथा उपस्थित जीवन्त मानव अध्ययन का होना चाहिये, यह ज्ञानार्जन की ओर ही अग्रसर नहीं करती वरन् ज्ञानार्जन की उस शक्ति का भी विकास करती है जो कक्षा शिक्षण से सम्भव नहीं है। टैगोर ने कहा कि छात्रों को चिन्तन के लिए प्रेरित करना चाहिये। पुस्तकों में पढ़े ज्ञान पर विभिन्न प्रकार के प्रश्न उत्तर किये जाने चाहिये। वस्तुतः यदि वह पुस्तकों में निहित सामग्री की आलोचना कर सके तो अधिक यथार्थता होगी। दैनिक जीवन की विभिन्न समस्याएँ उनके सम्मुख प्रस्तुत की जानी चाहिये व उनके समाधान हेतु वाद–विवाद कराये जाने चाहिये। छात्रों को अपने वातावरण में निहित समस्याओं का ज्ञान होना चाहिये और वे उसके निराकरण हेतु चिंतन करें और समाधान खोजें। टैगोर के अनुसार इस प्रकार का शिक्षण, कक्षा शिक्षण से अधिक प्रभावशाली होता है।

1.5 टैगोर की शिक्षण विधियाँः–

शिक्षण विधियों संबंधी सिद्धान्तों के आधार पर टैगोर निम्नलिखित विधियों को उपयोगी मानते हैंः–

स्वक्रिया शिक्षण विधिः–शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के साथ–साथ ही मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का श्रीगणेश हुआ। इन विधियों का आधार पाठ्य विषय वस्तु के स्थान पर बालक की रूचियाँ व क्षमताएँ होती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालक का सर्वोत्तम व सर्वाधिक विकास उसकी रूचि के अनुरूप कार्य प्रदान करके किया जा सकता है। तभी वह अपने प्राकृतिक रूप में विकास भी करता है। इनमें से एक स्वक्रिया विधि है। इसके अनुसार बालक किसी भी कार्य को स्वयं सम्पन्न करके भली प्रकार सीख सकता है क्योंकि उसका मस्तिष्क व शरीर दोनों क्रियाशील हो उठते हैं और वह कार्य व्यवहार में आने वाली बाधाओं से भी भली प्रकार परिचित हो जाता है। टैगोर ने इस विधि को बहुत महत्व किया। इन्होंने अपने शैक्षिक प्रयोगों का आधार व्यावहारिक प्रशिक्षण ही रखा।

प्रत्यक्ष शिक्षण विधिः–आधुनिक शिक्षा के लिए यह पद्धति नवीन नहीं है, किन्तु टैगोर के समय में इनका प्रचलन बहुत कम रहा। इसकी गणना मनोवैज्ञानिक पद्धतियों में हुई। इस सम्बन्ध में टैगोर ने कहा कि छात्रों के सम्मुख

विद्यमान यथार्थ वस्तुओं के सम्पर्क से उनकी अवलोकन तथा तर्क शक्ति का विकास होता है। इनके अनुसार शिक्षण–विधि यदि प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होगी तो उससे निरीक्षण तथा तर्कशक्ति का विकास होगा। इसलिए प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन, प्रकृति का निरीक्षण करके तथा सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन, सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं संस्थाओं के निरीक्षण से किया जाना चाहिये। टैगोर का मत है कि "पुस्तकों का परित्याग कर जीवित मानव का अध्ययन ही शिक्षा है। इससे ज्ञान प्राप्ति के साथ ही हम कुछ सीमा तक ऐसी शिक्षा प्राप्त करते हैं जो पुस्तकों में उपलब्ध नहीं है।

भ्रमण शिक्षण विधिः– टैगोर ने सीखने की अत्याधुनि भ्रमण विधि का समर्थन किया। इनके अनुसार भ्रमण के समय पढ़ना सवोत्तम विधि है। भ्रमण के समय हमारी मानसिक शक्तियाँ सतर्क व क्रियाशील होती हैं, जिससे हम तथ्य को सरलता से समझ लेते हैं। इसमें मस्तिष्क व शरीर दोनों का सम्बन्ध होता है और दोनों एक साथ क्रियाशील रहते हैं। इसलिए इन्होंने सचल विद्यालयों की कल्पना की तथा कहा कि इस पद्धति से बालक को वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से देखने की सुविधा के साथ–साथ परिवर्तनशील दृश्यों एवं विभिन्न वस्तुओं के निरन्तर आगमन से हमारे मानसिक संकाय सदैव जागरूक एवं गृहणशील बने रहते हैं। इसके साथ ही इन्होंने कविता पाठ अथवा सस्वर चिन्तन की भी बात की क्योंकि छात्रा इस प्रकार आकर्षक वस्तुओं को अपनी अभ्यास पुस्तिका में अंकित तथा चित्रित कर सकता है। मैं पूर्णतः निश्चित हूँ कि यदि सम्पूर्ण देह तथा उसकी क्रियाएँ सचेष्ट हैं तो हमारी शिक्षा तीव्र गति से होती है।

वाद–विवाद एवं प्रश्नोत्तर शिक्षण विधिः– वाद–विवाद अथवा तार्किक पद्धति का प्रचलन वैदिक काल में सर्वाधिक रहा। जिसमें गुरू–शिष्य आमने–सामने बैठकर किसी विषय पर विचार विमर्श करते हैं। इस पद्धति में बालक दैनिक जीवन की समस्याओं के संबंध में वाद–विवाद करते हैं तथा उनका हल खोजते हैं। इस विधि का प्रयोग आदिकालीन शंकराचार्य तथा पाश्चात्य दार्शनिक सुकरात ने भी किया था। यह कक्षा की नीरसता को दूर करने के लिए तथा बालकों की जिज्ञासा प्रवृत्ति को शान्त करने के लिए एक अति उत्तम विधि है। इसमें बच्चे का मस्तिष्क सक्रिय रहता है तथा वह विषय को गम्भीरता से समझ सकता है। इस विधि के प्रयोग से बालक में तार्किक शक्ति का विकास होता है जिससे वह उचित निर्णय लेने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। टैगोर तार्किक शक्ति के विकास के लिए वाद–विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधि को ही उचित समझते हैं। टैगोर का विचार है कि दिन–प्रतिदिन के जीवन की समस्याओं को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना चाहिये तथा उन समस्याओं के

समाधान के लिए विचार–विमर्श किया जाना चाहिये। इनका कहना है कि ज्ञान उस समय तक पूर्ण रूप से आत्मसात नहीं होता जब तक कि उस पर उचित ढंग से बातचीत एवं विचार–विमर्श न किया जाय। अपने कक्षा–शिक्षण में टैगोर ने स्वयं विद्यार्थियों की बौद्धिक, तार्किक तथा काल्पनिक शक्ति का प्रयोग करके यथासंभव विद्यार्थियों के सम्मुख प्रासंगिक समस्याओं को रखकर तथा कुशल प्रश्नों के माध्यम से तर्क द्वारा उत्तर निकालने की परम्परा का अनुगमन किया।

स्वाध्याय शिक्षण विधिः–दार्शनिकों का विचार है कि सम्पूर्ण ज्ञान कक्षा में दिया जाना संभव नहीं है। समय के साथ–साथ विषय वस्तु में भी परिवर्तन होता रहता है। अतः निरन्तर नवीन ज्ञान की प्राप्ति करने हेतु स्वाध्याय अति आवश्यक है। इस विधि का महत्व आदि काल से आधुनिक काल तक सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता रहा है। टैगोर का विचार है कि बालक स्वयं क अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करें। स्वाध्याय की आदत डालने पर ही व्यक्ति समाज की विभिन्न घटनाओं की जानकारी रख सकता है। इससे उसे समाज से सामंजस्य स्थापित करने में भी सहायता मिलती है।

स्वप्रयास व स्वचिन्तन द्वारा सीखने की शिक्षण विधिः– टैगोर का विचार है कि प्रचलित शिक्षण पद्धति जीवन विहीन होने के कारण अभावशील, अरूचिपूर्ण तथा अनुपयोगी हो गई है। प्रचलित विद्यालय शैक्षणिक उद्योग की भाँति बालक की आवश्यकताओं, रूचियों तथा अभिवृत्तियों पर ध्यान दिए बिना ही एक सी ही सामग्री उत्पन्न करते हैं। इन्होंने अपने शान्ति निकेतन में पाठ्यक्रम के साथ–साथ संस्कृति के अन्य अंगो, जैसे संगीत, कला, नृत्य व ऋतु त्यौहार व निकट के ग्रामों में समय–समय पर सहायता इत्यादि का भी आयोजन किया। इस विद्यालय में छात्रों को अपने विचारों को वे भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। साथ ही भावों के प्रकटीकरण से स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं जिसका माध्यम संगीत कला तथा अभिनय है। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों में सर्वप्रथम टैगोर ने मनोवैज्ञानिक विधियों का अपने शिक्षण संस्थान में प्रयोग किया। इन्होंने स्वप्रयास तथा स्वचिन्तन द्वारा सीखने पर बल दिया। इनके अनुसार वही ज्ञान स्थायी रूप से बालकों के मस्तिष्क में रह सकता है, जो उनको स्वयं के प्रयत्नों एवं चिन्तन से प्राप्त हुआ है।

प्रकृति के सहयोग द्वारा सीखने की शिक्षण विधिः–बालक के अवचेतन में ज्ञान की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए टैगोर ने व्यस्क व बालक की अधिगम विधियों की तुलना की। इनके अनुसार एक व्यस्क, मस्तिष्क

की एकाग्रता के फलस्वरूप सीखता है। वह सफलता के लिए छोटा मार्ग चाहता है, इस कारण उपयोगिता के दृष्टिकोण से ज्ञान का चयन कर लेता है। इसके विपरीत, बालक प्रकृति के सम्पर्क से प्रत्यक्ष अनुभव अर्जित करता है। उसका पूर्ण शरीर व मन एवं समस्त इन्द्रियाँ ज्ञानार्जन हेतु सक्रिय रहती है वह सब प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करने हेतु उत्सुक रहता है। वर्तमान शिक्षा अपने उपयोगितावादी दृष्टिकोण के कारण उससे वयस्क के समान व्यवहार की अपेक्षा करती है जोकि उसकी प्रकृति के विरूद्ध होने के फलस्वरूप उसमें असन्तोष व भग्नाशा को उत्पन्न करती है। टैगोर का विश्वास है कि प्रकृति–रहस्यों को जानने के लिए उसके साथ समरस होना पड़ता है, जो नग्न पैरों से पृथ्वी को स्पर्श करते हैं वे ही उसकी कठोरता, मृदुता, ऊँचाई व निर्वाह के रहस्यों से अवगत हो सकते हैं। प्रकृति से बालक को पृथक करके उसे प्रयोगशाला में अथवा कक्षा–कक्ष में पढ़ाना इन्हें अनुचित लगता है। इनके शब्दों में ''बालक को भूगोल पढ़ाने के लिए उसकी सहज भाषा उससे छिन्न–भिन्न कर देते हैं। उसकी भूख काव्य के लिए है किन्तु सम्मुख केवल तथ्यों और तिथियों से भरे पूरे अभिलेख प्रस्तुत कर दिए जाते हैं। बालक जन्म तो लेते हैं जगत में, किन्तु उन्हें बेजान ग्रामोफोन के जगत में ढकेल दिया जाता है।''

1.6 शिक्षा का माध्यम मातृभाषा :–

टैगोर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने के पक्षधर हैं। इनका विश्वास है कि सामान्य जनता को मात्रा मातृभाशा के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान करना सम्भव है क्योंकि लाखों लोगों को विदेशी भाषा सीखने की आवश्यकता नहीं है। सामान्य जनता को श्रेष्ठ विचार मातृभाषा में ही दिये जा सकते हैं। क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह विस्तार तथा गहराई से बहती है। टैगोर के अनुसार, यदि सामान्य जनता की शिक्षा उच्च स्तर की है तो उस राष्ट्र में उच्च शिक्षा फले फूलेगी, क्योंकि सामान्य जनता उच्च स्तर पर ऐसी शिक्षा को पोषित करेगी तथा संस्कृति की सामान्य धारा सामान्य जनों के जीवन की नसों व आँतों में बहकर जायेगी। इसके विपरीत यदि मूल धरती शुष्क है तो वृक्ष की शाखायें थोड़े समय में ही सूख जाएंगी।

संक्षेप में टैगोर के अनुसार मातृ–भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से अनेक लाभ हैं:–

- मातृ–भाषा के द्वारा शिक्षा देना एक बड़े समुदाय के लिए सम्भव है तथा उसे उसकी आवश्यकता भी होती है। जैसे एक गाँव के कृषक को अपना कार्य मातृभाषा में करने में जो सुविधा होती है, वह विदेशी भाषा में नहीं होती।
- मातृ–भाषा से मन के कपाट खुल जाते हैं तथा इसी के द्वारा रचनात्मक मनोवेगों का प्रकाश संभव होता है। इन्होंने कहा ''पश्चिम ने जो कुछ सिखया है, यदि हम उसे ही तोते की भाँति रटते रहेंगे तो इससे राह

चलते लोगों को भले ही आश्चर्य होता रहे तथा मजा मिलता रहे परन्तु संसार को कोई लाभ नहीं होगा। इसके अतिरिक्त यदि हमें अंग्रेजी के माध्यम से सब कुछ सीखने के लिए विवश किया जाता है तो ज्ञान भवन के दरवाजे खटखटाते और कुंजी घुमाते ही हमारे जीवन का उत्तम अंश व्यतीत हो जायेगा।

- शिक्षा का माध्यम मातृ–भाषा होने से विद्यार्थियों में भौतिक रचनात्मक चिंतन उत्पन्न होता है। इससे आत्माभिव्यक्ति की जा सकती है।
- विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने पर बालक के मस्तिष्क पर बचपन से ही अनावश्यक दबाव पड़ता है।
- विदेशी भाषा, समाज को दो वर्गों में बाँट देती है – एक, वह वर्ग जो अंग्रेजी जानता है तथा दूसरा वह जो अंग्रेजी नहीं जानता। इस प्रकार समाज के बीच एक खाई पैदा हो जाती है जो देश की सामाजिक सभ्यता व संस्कृति के लिए घातक है।

1.7 निष्कर्ष

भाषा समस्या ने देश में बहुत कटुता और विवाद को जन्म दिया है। इस समस्या के समाधान में टैगोर के विचार आज की परिस्थितियों में बहुत ही लाभदायक हो सकते हैं। इन्होंने मातृभाषा केा शिक्षा का आधार माना और कहा कि प्रत्येक देशवासी को उसकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिये क्योंकि मातृभाषा ही शिक्षा का स्वाभाविक तथा सरलतम माध्यम होती है। मातृभाषा को शिक्षा का आधार मानने के साथ–2 इन्होंने अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन केा सांस्कृतिक एकता के लिए उपयोगी बताया। इन्होंन विदेशी भाषाओं को भी पाठ्यक्रम में उचित स्थान प्रदान किया क्योंकि विदेशी भाषाओं के माध्यम से हम विश्व संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तथा विश्व के सभी मानवों को एक दूसरे के समीप लाने में सहायता कर सकते हैं।

मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा भी शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाए। टैगोर ने एक शिक्षक के लिए बाल मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक समझा और यह माना कि इसके द्वारा अध्यापक छात्रों के अधिक समीप आ सकता है। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों में सर्वप्रथम टैगोर ने ही मनोवैज्ञानिक विधियों का अपने शिक्षण संस्थान में प्रयोग किया। ये मानते हैं कि शिक्षा का आधार व्यावहारिक तभी हो सकता है, जब उसे मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाय। कठिन दौर से गुजर रहे भारतीय विश्विद्यालय आज नाजुक मोड़ पर आ खड़े हुए हैं। विश्वविद्यालयों के गुणात्मक विकास की ओर अभी तक अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है। उच्च शिक्षा के उद्देश्य और स्वरूप को

लेकर कोई स्पष्ट अवधारणा अभी तक नहीं बन पायी है आज के विश्वविद्यालय अर्द्धज्ञानी और अज्ञानी छात्रों की फौज ही खड़ी कर रहे हैं। विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रवेश और शिक्षकों की नियुक्ति में पारदर्शिता का अभाव पाया जाता है। आज के विश्वविद्यालय शिक्षा के पावन मन्दिरों के स्थान पर राजनीति के अखाड़े बन गये हैं। गुणात्मक विकास के लिए इन्होंने कहा कि यह शिक्षा सबके लिए नहीं होनी चाहिये। केवल योग्य, प्रतिभाशाली, ज्ञानी, जिज्ञासु और शोधकार्य में रूचि रखने वाले छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिलना चाहिये। छात्रों का चयन प्रतिभा और क्षमता की परीक्षा द्वारा होना चाहिए न कि माता पिता की समृद्धि और कुलीनता के आधार पर विश्वविद्यालयों के शिक्षक, विद्वान, कर्मठ, शिक्षण में कुशल और खोज कार्य करने वाले होने चाहिये। विश्वविद्यालयों में शिक्षकों और शिक्षार्थियों को आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होना चाहिए और यह कार्य शासन तथा जनता का होना चाहिए, ताकि वहाँ पर बौद्धिक वातावरण बना रहे। शिक्षकों को अपने ज्ञान और कर्मठता से सन्तुष्ट न करने वाले शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालयों से हटा देने की व्यवस्था भी होनी चाहिये। केवल योग्य, प्रतिभाशाली, ज्ञानी, जिज्ञासु और शोधकार्य में रूचि रखने वाले छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिलना चाहिये। छात्रों का चयन प्रतिभा और क्षमता की परीक्षा द्वारा होना चाहिए न कि माता पिता की समृद्धि और कुलीनता के आधार पर विश्वविद्यालय के शिक्षक, विद्वान कर्मठ, शिक्षण में कुशल और खोज कार्य करने वाले होने चाहिये। विश्वविद्यालयों में शिक्षकों और शिक्षार्थियों को आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होना चाहिए और यह कार्य शासन तथा जनता का होना चाहिए, ताकि वहाँ पर बौद्धिक वातावरण बना रहे। शिक्षकों को अपने ज्ञान और कर्मठता से सन्तुष्ट न करने वाले शिक्षार्थियों को विशविद्यालयों से हटा देने की व्यवस्था भी होनी चाहिये। इस प्रकार विश्वविद्यालयों के विद्यामन्दिर बनना चाहिये न कि मनोरंजन के स्थल। टैगोर ने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचारों, सिद्धान्तों और आदर्शों को विश्वभारती के रूप में साकार किया, जो आज एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में कार्य कर रहा है। मानववाद, विश्वएकता, सर्जनात्मकता, कलात्मक अभिव्यकि, स्वतन्त्रता, सौन्दर्यबोध, प्राकृतिक जीवन आदि आदर्श विश्व की शिक्षा संस्थाओं के लिए प्रकाश स्तम्भ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- टैगोर रवीन्द्रनाथ टैगोर "साधना" डिलिवर्ड एट द हावर्ड युनिवर्सिटी, यू.एस.ए. मैकमिलन कम्पनी न्यूयार्क– 1912–13
- टैगोर रवीन्द्रनाथ पर्सनालिटी – मैकमिलन एंड कम्पनी 1917

- टैगोर रवीन्द्रनाथ "नेशनलिज्म" लेक्चर्स डिलीवर्ड एट जापान एण्ड द यूनाइटेड स्टेट्स 1916–17 मैकमिलन कम्पनी।
- टैगोर रवीन्द्रनाथ "लेटर्स टू ए फ्रेन्ड" जार्ज एलिन एण्ड एनविन लिमिटेड लन्दन 1928
- टैगोर रवीन्द्रनाथ "द रिलीजन ऑफ मैन" एलिन एण्ड एनविन लिमिटेड, लन्दन 1931
- टैगोर रवीन्द्रनाथ क्रिसिज इन सिविलाइजेशन, विश्वभारती पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट कलकत्ता– 1950
- टैगोर रवीन्द्रनाथ "ऑन द एज्स ऑफ टाइम्स" विश्वभारती पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट कलकत्ता, 1950
- टैगोर रवीन्द्रनाथ लेक्चर्स एण्ड एड्रेस ; मैकमिलन एण्ड कम्पनी मद्रास, 1962
- टैगोर रवीन्द्रनाथ "द को ऑरेटिव प्रिंसीपल्स" विश्वभारती, काथ सामन्त, कलकत्ता, 1963
- टैगोर रवीन्द्रनाथ गीतांजली, मैकमिलन एण्ड कम्पनी मद्रास, 1966
- अनुवाद चर्चा (ए डिसकशन ऑफ टांसलेशन) इन ट्पार्ट्स ; अंग्रेजी सुति शिक्षा ; 1929 अंग्रेजी।
- सहज शिक्षा (1930) एट द एज ऑफ सेवन्टी, ही रोट ए प्राइमर इन बंगाली फार यंग चिल्उरन; सहज पथ, 1932
- पाठक, पी.डी. (1977), भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- शर्मा, आर.ए. (2016), शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।
- पाण्डेय, रामशक्ल (2011), उभरते हुये भारतीय समाज में शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- मित्तल, एम.एल. (2009), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।
- सक्सेना, सरोज (2007), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- ठाकुर रवीन्द्रनाथ–रवीन्द्रनाथ का शिक्षादर्शन, अनुवादक– गोपाल प्रधान, श्यामबिहारी राय द्वारा ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट, लिमिटेड, बी.–7, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली 110092 के लिए प्रकाशित, संस्करण 2017 पृ0 9–10
- ठाकुर रवीन्द्रनाथ–रवीन्द्रनाथ का शिक्षादर्शन, अनुवादक– गोपाल प्रधान, श्यामबिहारी राय द्वारा ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट, लिमिटेड, बी.–7, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली 110092 के लिए प्रकाशित, संस्करण 2016
- डॉ0 एम0एस0 भट्टाचार्य : रवीन्द्रनाथ–पोस्ट एण्ड थिंकर, किताब महल, इलाहाबाद, 2016, पृ0 44